प्रथम अध्याय

"कबीर जीवनपर आधारित नाटकों का सामान्य परिचय"

प्रथम अध्याय

'कबीर जीवनपर आधारित नाटकों का सामान्य परिचय '

1.1 प्रस्तावना –

संत कबीर सोलहवी शती का महत्वपूर्ण व्यक्तित्व रहा है। अपने विद्रोही और क्रांतिकारी स्वरों की वजह से कबीर मध्ययुगीन संतो में सबसे अलग दिखाई देते हैं। कबीरकाल में जो सामाजिक परिस्थिति थी, समस्याएँ थीं वह वर्तमान समाज में भी दृष्टिगोचर होती हैं। समाज में आज भी ऊँच–नीच का भेदभाव चरमसीमा पर है। आज भी निम्नवर्गीय लोग तथा स्त्रियों का शोषण हो रहा है। कबीर की कविता तानाशाही के विरूद्ध तथा सत्य और न्याय के लिए, शोषण के विरूद्ध डटकर लड़ने की शक्ति प्रदान करती है। "दहाडते हुए आतंक के बीच कबीर ने हर खतरा और जोखिम उठाते हुए, सच कहने का ही नहीं सच को जीने और अमल में लाने का साहस किया।"[1]

कबीर के विद्रोही व्यक्तित्व ने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्र को झकझोर कर रखा था। उस वक्त कबीर ने जो विचार प्रस्तुत किये थे अब तक कालजयी साबित हो चुके हैं। अत: तभी से भारतीय मानस पर कबीर की एक छाप रही है। साहित्यकारों पर भी कबीर हावी हुए दिखाई देते हैं। आज के रचनाकार भी कबीर को अपनी रचना का माध्यम बनाने के मोह से मुक्त नहीं हो पाये हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक, काव्य के माध्यम से आज के बाजार में कबीर खडे हुए पाये जाते हैं। बीसवीं सदी के नौंवें दशक के प्रारंभ में कुछ हिंदी नाटककारों ने कबीर जीवन को आधार बनाकर, कुछ नाटक प्रकाशित किए जिनमे मणि मधुकर के 'इकतारे की ऑख'. भीष्म साहनी के 'कंबिरा खड़ा बजार मे, तथा नरेंद्र मोहन के 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' आदि नाटकों का समावेश हैं। विवेच्य शोध विषय की दृष्टिसे इन नाटकों के साथ नाटककारों का भी सामान्य परिचय कर लेना अनिवार्य है, जो निम्नप्रकार है –

1.2 मणि मधुकर तथा उनकी रचना 'इकतारे की आँख' (1980)

मणि मधुकर द्वारा रचित 'इकतारे की आँख' यह कबीर जीवन पर आधारित नाटक नाट्य साहित्य में महत्वपूर्ण नाटक माना जाता है।

1.2.1 मणि मधुकर : परिचय

साठोत्तर हिंदी नाट्यसाहित्य में मणि मधुकर का नाम अग्रगण्य है। प्रतिभाशाली लेखकों में उनका नाम लिया जाता है। नाटक के अतिरिक्त उपन्यास, कहानी, कविता आदि साहित्यिक विधाओंमे भी उन्होंने अपना मौलिक योगदान दिया है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाट्यसाहित्य में अपनी प्रयोगशीलता के कारण वे हमेशा चर्चा के विषय रह चुके हैं। बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार के रूप में उनका स्थान महत्वपूर्ण है। वह आम व्यक्ति के जरिए संपूर्ण समाज व्यवस्थापर तिखा व्यंग्य करते हैं। उन्होंने अन्याय, शोषण, अत्याचार का अपने लेखन के द्वारा कसकर विरोध किया है।

9 सितंबर, 1942 को मणि मधुकर का जन्म हुआ। राजस्थान विश्वविद्यालय से हिंदी विषय में प्रथम स्थान हासिल कर उन्होंने एम.ए. किया । उन्होंने कल्पना (हैदराबाद), 'अकथ; (जयपूर), 'रंगयोग' आदि पत्रिकाओं के संपादन का कार्य किया है। बहुमुखी साहित्यकार होने के कारण साहित्य का एक भी क्षेत्र उनसे अछुता नहीं रहा है। अपने साहित्य को संपन्न बनाने के लिए उन्होंने जो विविध प्रयोग किये वे निम्नप्रकार हैं –

कविता संग्रह -

खंड खंड पर्व, घास का घराना, बलराम के हजारों नाम, सुधि सपनों के तीर आदि।

कहानी संग्रह -

हवा में अकेले, एकवचन-बहुवचन, त्वमेव माता, चुपचाप दु:ख, हे भानमती, चुनिंदा चौदह, भरत मुक्ति के बाद आदि।

नाटककार के रूप में अधिक विवेचन अपेक्षित है।

उपन्यास -

सफेद मेमने, पत्तों की बिरादरी, पिंजरे मे पत्ता, मेरी स्त्रियाँ, सरकंडे की सारंगी आदि।

इसके अतिरिक्त मणि मधुकर जी ने अनेक पत्रिकाओं के संपादन तथा संकलन का कार्य किया है। बाल साहित्य, रेड़ियो नाटक आदि की भी रचना की है। राजस्थानी भाषा में भी उन्होंने लेखन कार्य किया है। हिंदी नाट्य साहित्य में मणि मधुकर ने प्रयोगशील नाटककार के रूप में ख्याति प्राप्त की है। ''मणि के नाटकों में आम आदमी के दु:ख दर्द आकाशा—आशंकापूर्ण बुनियादी कारणों की तलाश करते हुए व्यवस्था की विसंगतियों और विडम्बनाओं को न केवल उजागर ही किया है, बल्कि उनके लिए जिम्मेदार शक्तियों के खिलाफ सगठित होकर सतत संघर्ष करने की प्रेरणा भी दी है।''[2] मणि मधुकर के नाटकीय प्रयोगों के बारे मे कहा जाता है। ''आज के नाटक को मणि मधुकर के नाटकों ने नयी शक्ति, नये प्रयोग, नयी शैली, समसामायिक संदर्भ, नया कथ्य, बदले हुए संदर्भ की बदली हुई भाषा, नाटक और रंगमंच का अनोखा लयविधान और प्रचलित नाट्य कड़ियों को तोड़ता हुआ खुला लेकिन जीवन्त वातावरण दिया है और दिया है आम आदमी के जीवन का मुहावरा।''[3]

1.2.2 इकतारे की आँख -

मध्य प्रदेश के कला परिषद के निमंत्रण पर विशिष्टतापूर्वक विशेष रूप लिखा गया नाटक ''इकतारे की आँख'' सर्वप्रथम 18 नवम्बर 1979 को भोपाल के रविंद्रभवन में जबलपूर की नाट्यसंस्था 'विवेचना' द्वारा प्रस्तुत किया गया। जिसके निर्देशक थे श्री अलखनन्दन। समाज की विसगतियों के विरूद्ध प्रतिकार करनेवाले विद्रोह, विरोध और व्यग्य के प्रतीक कबीर विवेच्च नाटक में अपनी संपूर्ण उर्जस्वीता से प्रस्तुत हुए हैं। 'इकतारे की आँख' इस नाटक में कबीरयुगीन काशी की सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक

स्थिति का आज के भारतीय परिवेश में संकेतात्मक चित्रण किया गया है।

नाटककार ने इस नाटक में कबीर और उनके तद्‌युगीन समकालीन स्थिति को नये संदर्भ देकर प्रस्तुत किया है। कबीर को केंद्रबिंदू मानकर लिखे गए इस नाटक में अधर्म और पाखण्ड पर कड़ा प्रहार किया है। 'इकतारे की आँख' नाटक के संदर्भ में गिरिश रस्तोगी के विचार दृष्टव्य है – ''नाटक मुख्यत: कबीर को आधार बनाकर चलता है। तथा कबीर के माध्यम से मानवीय त्रासदी और आधुनिक भावबोध को प्रस्तुत किया गया है। कबीर के पदों, दोहों, साकियों का विभिन्न संदर्भ मे प्रयोग किया गया है।''[4]

'इकतारे की आँख' यह नाटक चरित्रप्रधान है। इस नाटक में नाटककार ने कबीर के संत, विद्रोही, अक्खड़पण तथा उनका द्रष्टा रूप चित्रित किया है। कबीर के जीवन वृत्तपर प्रकाश ड़ालते हुए कबीर के समाजसुधारक रूप का भी उत्कृष्ट चित्रण किया है। कबीर धर्म के नामपर होनेवाले अत्याचार, कर्मकांड, बाहयाडंबर आदि पर कठोर आघात करते हैं। इससे कबीर का द्रष्टा रूप हमारे सामने आ जाता है। नाटककार ने शीर्षक में 'आँख' शब्द का प्रयोग कबीर के द्रष्टे रूप को सामने रखकर ही किया है। इससे शीर्षक की सार्थकता सिद्‌ध होती है। नाटककार ने इस नाटक में समाज सुधारक कबीर के साथ साथ लोई, रैदास, कमाल, निर्देशक, अभिनेता, कोतवाल, मुल्ला, पंडित, जोगी तथा महाभैरवी आदि पात्रों का चित्रण किया है। नाटक को पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो विभागोंमें विभाजित किया गया है।

पूर्वार्ध में नाटक की शुरूवात नगाड़ों का शोर, मंदिर की घंटियों की घनघनाहट, किर्तन के स्वर और बीचमें से सुनाई देनेवाली मुल्ला की आजान आदि से होती है। तीन व्यक्तियों की बातचीत से कबीरकालीन स्थिति का ज्ञान होता है। नाटककार ने इस नाटक में 'महाभैरवी' नामक देवी का चित्रण किया है जिसे जादूटोना, मंत्रतंत्र की विद्या हासिल है। उच्चाटन मंत्र, मोहिनी मंत्र आदि में वह पारंगत है। उनके उपयोगद्‌वारा वह भक्तों की

मनोकामना पूर्ण करती है। भैरवी का एक स्त्रीलंपट भक्त बुढ़ापे में शूर्पणखा–जैसी लगनेवाली अपनी बीवी को भैरवी के उच्चाटन मंत्र के द्वारा त्यागना चाहता है। वह भैरवी की शिष्या चंद्रिका पर आसक्त है। पेशे से जौहरी होनेवाला भक्त जिंदगी में चौदह ब्याह कर चुका है। उतनी ही रखेलें उसके पास हैं। बुढापे में वह स्त्रीलपट भक्त नूरमहल वाली मोतीबाई का उपभोग लेना चाहता है। अपने रास्ते का रोड़ा बने हुए अपने बेटे को मरियामेट करने के लिए वह महाभैरवी से प्रार्थना करता है – ''उस रोड़े को हटाइए माता। – – उसपर मूठ चलाइए, उसे मरियामेट कर दिजिए।''[5]

दो जोगी रैदास की पत्नी ज्यानकी को अगवा कर उसपर बलात्कार करते है। उसे वही खत्म कर दिया जाता है। उन्ही विषयासक्त जोगियों की थूक को भक्तगण गंगाजल से भी पवित्र मानकर अपनी झोली में बटोरते हैं। अपने आचरण के लिए सुंदर स्त्रियों को जिम्मेदार ठहराने वाले जोगी कहते हैं, ''सुंदर औरतें बदचलन होती हैं। समाज का आचरण बिगाड़ती है, उनपर डोरे डालती हैं।''[6]

नाटक का निर्देशक अभिनेत्री को नाट्यदल को ग्रांट देनेवाले आई.ए.एस. ऑफिसर गुप्ताजी को पटाने का हुक्म देता है। अपने नाटक की सफलता के लिए वह अभिनेत्री को ठाकुर विनायकप्रसाद नारायण सिंह के सम्मुख पेश करना चाहता है। वह कहता है,''ठाकुर साहब की ओर से ऐसा निमंत्रण मिलना बड़ी बात है। संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार भी उसके सामने कुछ नहीं। तुम्हारा भविष्य उज्वल है।''[7]

नाटककार ने मंगलाचरण को नये आयाम में प्रस्तुत करते हुए आज की राजनीतिपर करारा व्यंग्य किया है। 'इकतारे की ऑख' नाटक में गणेशवन्दना के स्थानपर नाटक के कलाकार ठाकुर साहब की वन्दना करते हैं। वास्तव में इस गणेशवन्दना के द्वारा तत्कालिन नेताओं पर व्यंग्य किया है। आज के नेताओं के पेट का आकार गणपति जैसा

स्थूल दिखाई देता है। खाना, पिना, ऐश करना आदि कार्य अत्यंत विनम्रता से वे करते हैं। मेवा, पिस्ता तथा बदाम से भरेपूरे लड्डूओं का सेवन कर वेश्याओं के साथ रातें गुजारना उनका दिनक्रम है। निम्नांकित पंक्तियों से नेतागणों की दिनचर्या का पता चलता है –

"आओ पहले हम विनायकजी की वन्दना करें
उनके मोटे थुलथुल पेट के उपर लड्डू धरें
लड्डू में पिस्ता हो खूब, बादाम और मेवा
खाकर ठाकुर करेंगे दिनभर देश की सेवा
रात को कोठे के मुजरे में बैठे टांग पसार के
बाई के सग सोकर देखे सपने जन उद्धार के।"[8]

इस नाटक का ढोंगी मुल्ला अपने ही आदमियों को अंधा बनाकर बाजार मे खडा करता है। फिर उन्हे दृष्टि प्रदान करने का नाटक करता है। ऐसा करके खुद के लिए खैरात बटोरता है। कबीर और रैदास मौलवियों का ढोंग देखकर उनका पर्दा फाश करने के लिए अंधों के सामने 'साँप–साँप' कहकर चिल्लाते हैं। तब अन्धे बने हुए लोग घोड़े की तरह सरपट दौड़कर भाग जाते हैं। "काशी में चारों तरफ यही ढोग चल रहा है। पंडित जोतसी बिमारों को अच्छा कर रहे हैं। असल में उन्हीके सिखाए लोग बीमार और अंधे बनने का नाटक करते हैं और फिर चमत्कार की डोंडी पिटवाई जाती है।"[9]

शहर का खूँखार कोतवाल भी स्त्रीलंपट है। वह गरीबों को कष्ट देने की एक भी वजह नहीं छोड़ता। उसने दर्जियों, रंगरेजे, भडभूंजो एवं नाईयों के मुहल्ले के रहिवासियोंपर एक हाथी को खिलाने पिलाने की जिम्मेदारी डाल रखी है। हीन आर्थिक स्थिति में जीनेवाले लोग यह जिम्मा नही उठा पाते। हाथी को खिलाते–पिलाते उनके सारे धंदे चौपट हो गए हैं। वे कोतवाल से बिनती कर इस मुसीबत से छुटकारा पाना चाहते हैं। उनकी शिकायत सुनकर कोतवाल रूष्ट हो जाता है तथा उनपर दो हाथियों की देखभाल की जिम्मेदारी डाल देता है। तथा महंगू दरजी के पचास कोडे लगाने का हुक्म देता है।

.कोतवाल जिस रास्ते से गुजरता है वहाँ एक बच्चा लघुशका करता है। उसी समय कोतवाल का एक सिपाही बच्चे का सिर काटकर कोतवाल के सामने पेश करता है। सनकी कोतवाल उसे तरक्की देने की बात कहता है।

उत्तरार्ध में काशी के लोकजीवन पर प्रकाश डाला गया है। अपने को जोगी कहलाने वाले हाथो में बरछी, भाले, तलवारें लेकर घुमते हैं। क्षण में धर्म का उपदेश देनेवाले दूसरे क्षण मे मारकाट पर उतर आते हैं। काशी नरेश का भी ध्यान प्रजा के ऊपर नहीं है। बनिये तथा साहुकारों की शोषण की चक्की में आम जनता पीसती जा रही है। कबीर वर्णव्यवस्था की नींव को हिलाने का कार्य करते है। इससे वर्णव्यवस्था के ताबेदार बौखला उठते हैं। कोतवाल कबीर को गंगा में डुबो देने का फर्मान निकालता है। कबीर को अपना सबकुछ मानने वाले उसे बचा लेते हैं।

उसी वक्त लोई और कबीर की भेंट होती है। परस्पर अनुरूप पाकर वे एकदूसरे का साथ निभाने का निश्चय करते हैं। उसी वक्त लोई को कबीर से उसकी पत्नी धनिया के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। विवाह के उपरांत कबीर और धनिया की गृहस्थी नहीं बनती है। इस बारेमें कबीर कहते है, ''रिश्तो को कच्चे सूत में बॉधकर नहीं रखा जा सकता। उसकी (धनिया) एक साहुकार से आशनाई थी। वह कबीर को हमेशा जली–कटी सुनाती रही और अंत में जाते समय गॉव मे डोडी पीटकर चली गई।''[10]

कबीर, लोई तथा रैदास लोगों को मानव–जन्म की कहानी सुनाते हैं। वे मानव तथा शैतान की उत्पत्ति किस प्रकार हुई; यह समझाते हैं। तभी नागरिक एक और दो बताते हैं कि किस तरह लोग मोक्षप्राप्ति के लिए काशी आ जाते हैं। काशी में मरेंगे तो मोक्षप्राप्त होगा, सीधे स्वर्गवासी होंगे। इस अंधश्रद्धा की वजह से वे शिवजी के सामने अपने शरीर को चिरवा देते हैं। कोतवाल के सामने कबीर को पेश किया जाता है। मंदिर में प्रवेश

करने, लोगों मे आजाद खयाली के बीच बोने के कार्य के लिए कबीर का सिर कलम करने का हुक्म दिया जाता है। उसी वक्त लोई प्रवेश कर कोतवाल से कहती है कि, जिन लोगों को तुम हेय, तुच्छ समझते हो उनपर तुम्हारा राज टिका हुआ है। गुस्से में बौखलाया हुआ कोतवाल कबीर को कोल्हू में पेल देन का हुक्म देता है। तभी इकठ्ठा हुई भीड़ नारे लगाती है—

"कबीर नहीं मरेगा, नहीं मरेगा
वह जिन्दगी का पहरूआ है
जिन्दा रहेगा।"[11]

बौखलाई हुई भीड़ को देखकर कोतवाल भाग जाता है।

नाटक की रिहर्सल खत्म होते ही दर्शकों में से सज्जन एक व दो उठकर अपने ज्ञानी होने का गर्व लिए मचपर उपस्थित होते हैं। अपना नाम निमंत्रण पत्रिका में छपवाने की उनकी इच्छा है। तभी एक युवक मंचपर आकर उन दोनों को भगाता है। वह युवक छात्रसंघ का नेता है। वह निर्देशक को यह साफ साफ बताने के लिए कहता है कि कबीर किस पार्टी से थे। वह युनिवर्सिटी का इलेक्शन लड़ना चाहता है। तभी गायक एक और दो के द्वारा कबीर के मगहर चले जाने के संकेत मिलते हैं। कबीर बुरी तरह से बीमार रहते हैं, वैद्य के उपचार उनपर नहीं चलते। अपने जान पहचान के वैद्य को बुलाने काशी वापस आने पर लोई की मुलाकात कमाल से हो जाती है। कबीर से मिलने कमाल लोई के साथ मगहर चला जाता है। नाटक के अंत मे कबीर का देहांत हो जाता है।

निष्कर्ष :

'इकतारे की ऑख' एक सुचिंतित रचना है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक मिथक कबीर को आधार बनाकर लिखे गए इस नाटक मे अनेक राजनीतिक समस्याओं को उजागर किया है जो वर्तमान समाज में भी विद्यमान है। कबीर के विचारोद्वारा समाज में व्याप्त समस्याओं के विरूद्ध ड़टकर खड़े रहने की प्रेरणा देना नाटककार का प्रमुख उद्देश्य है। 'इकतारे की

आँख' इस नाटक में प्रारंभ से लेकर अंत तक संघर्ष दृष्टिगोचर होता है।

नाटक के पूर्वाध में तीन व्यक्तियों की परस्पर बातचीत से कबीर कालीन परिवेश का ज्ञान होता है। जिसमें अंधश्रद्धावश लोग समस्याओं का समाधान करने हेतु मंत्र मंत्र का सहारा लेते हुए पाये जाते हैं। भोग विलास की गर्त में डुबे महंत तथा उनके साधक निम्नवर्ग की स्त्रियो पर अत्याचार करते हुए पाये जाते हैं। नाटक का निर्देशक तथा अभिनेत्री के वार्तालाप से नाट्य संस्थाओं को प्राप्त होनेवाली आर्थिक सहायता तथा प्राप्त होने वाले विभिन्न पुरस्कारों का खोखलापन पाठकों के सम्मुख प्रकट होता है। स्त्रीलंपट कोतवाल समाज की सुरक्षा करने के बजाय समाज में आतंक फैलाने का कार्य करता हुआ दृष्टिगोचर होता है।

उत्तरार्ध में दहशत भरे काशी के लोकजीवन को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। शस्त्रों के बलपर महंत धर्म प्रसार का कार्य करते हुए पाये जाते हैं। मगहर के भयानक हालात को देखते ही कबीर का मगहर जाकर अंधविश्वास के विरूद्ध संघर्ष का वर्णन दिखाई देता है। छात्रसंघ के युवानेता पर राजनेताओं का विपरित असर दिखाई देता है।

निष्कर्षत. ''दुहरा कथानक लेकर बुना गया यह नाटक कबीर के जमाने की याद ही ताजा नहीं करता, वह अहसास भी कराता है कि तब से आज तक कोई खास फर्क नहीं आया है। शोषकों के नाम, पद और चेहरे बदल गये हैं, पर चरित्र वही कोतवाल का, उसी रांड सांड सन्यासी का आज भी विद्यमान है। नीच जाति के रैदास की बीवी को भोगना योगी सन्यासियों का धर्म था, मठाधिशों का चरित्र था, आज भी हरिजन एवं निम्नवर्ग की स्त्रियों का शोषण वैसे ही होता है। नगर कोतवाल की क्रूरता और शोषण के विभिन्न रूप आज के राजनीतिक नेताओं और सरकारी अफसरों में वैसे ही मौजूद हैं।''[12]

1.3 भीष्म साहनी और उनकी रचना 'कबिरा खड़ा बजार में' (1981)

भीष्म साहनी जी का नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' यह प्रसिद्ध ऐतिहासिक मिथक कबीर पर आधारित है। यह उनकी विशेष नाट्यकृति मानी जाती है।

1.3.1 भीष्म साहनी : परिचय

भीष्म साहनी हिंदी कथा साहित्य की प्रगतिशील परंपरा के प्रभावी प्रवाहक हैं। भीष्म साहनी जी को हिंदी कथा साहित्य में असाधारण स्थान है। भीष्म साहनी जी ने अपने साहित्य में रूढियों, अनिष्ट परंपराओं, अंधश्रद्धाओं, कुप्रंथाओं का कड़ा विरोध किया है। समाज–मानस का अनुसंधान करके उन्होने अपने साहित्य की रचना की है। उन्होंने अधिकतर अपने साहित्य में समाज में घटित होनेवाली परिस्थितियों को उभारा है। आज के समाज के रहन–सहन, उनके जीवन जीने के तौर–तरीके, उनकी समस्याओं को अपने साहित्य में अंकित किया है। वे एक यथार्थवादी रचनाकार माने जाते हैं।

साहनीजी का जन्म 8 अगस्त, 1915 को रावलपिण्डी (पाकिस्तान) में हुआ। उनके पिता का नाम हरवंशलाल तथा माता का नाम लक्ष्मीदेवी था। पिता हरवंशलाल पुरूषार्थ प्रेमी थे। साहनीज़ी की प्रारंभिक शिक्षा गुरूकुल पोठोहोर में होने के बाद 1931 में उन्होंने मैट्रीक की परीक्षा उत्तीर्ण की। 1933 में उन्होने इंटरमीड़ियेट की परीक्षा पास की और लाहोर के गव्हर्नमेंट कॉलेज से स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षा लेने के उपरांत पंजाब विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। उन दिनों देश के विभाजन की चर्चा हो रही थी। इस स्थिति में देश के तमाम नौजवानों पर गांधीवादी विचारों का प्रभाव पड़ा। भीष्म साहनीजी भी उन्ही में से एक थे। वे भी गांधीवादी प्रवाह में शरीफ हो गए।

दिल्ली विश्वविद्यालय के दिल्ली कॉलेज में पाश्चात्य साहित्य से उनका गहरा संबंध स्थापित हुआ। रूसी साहित्य में उन्हे विशेष रूची थी। मास्को के विदेशी भाषा प्रकाशनगृह में 1957 में वह अनुवादक के रूप में रहे। सात वर्ष वह यह कार्य करते रहे। जिनमें

टॉलस्टॉय का पुनरूस्थान, लम्बी कहानियॉ, निकोलाई अस्त्रावस्की का 'जय जीवन' और आईनभालेव का 'पहला अध्यापक' आदि प्रमुख मानी जाती है। 1965 से 1967 तक उन्होंने 'नई कहानियॉ' का सपादन कार्य किया। 1980 के बाद वह स्वतंत्र लेखन कार्य करते रहें। साहनी जी सेवाभावी, विनम्र और संवेदनशील व्यक्ति माने जाते हैं। यह उनके साहित्य से दृष्टिगोचर होता है। भीष्म साहनी जी यथार्थवादी रचनाकार होने के साथ वह समाज के मध्यवर्ग को अधिकतर अपनी रचनाओं में व्यक्त करते हैं।

उन्होंने अधिकतर अपने साहित्यमें पंजाब और रावलपिण्डी के क्षेत्र के वातावरण को दर्शाया है। हिंदू–मुस्लिम, सिक्ख आदि की एकसंध संस्कृति का अपने अनुभव के आधारपर उन्होने चित्रण किया है। उनका प्रमुख साहित्य निम्न प्रकार है –

कहानी संग्रह -

भाग्यरेखा, पहला पाठ, भटकती राख, पटरियॉ, वांङ्‍चू, शोभायात्रा, निशाचर, पाली, प्रतिनिधि कहानियाँ, मेरी प्रिय कहानियाँ, चर्चित कहानियॉ, ड़ायन आदि।

उपन्यास -

झरोखे, कड़ियाँ, तमस, बसन्ती, मय्यादास की माड़ी, कुंतो, नीलू, नीलिमा, निलोफर आदि।

नाटक -

हानूश, कबिरा खड़ा बजार मे, माधवी, मुआवजे, रंग दे बसन्ती चोला, फूजीयामा, आलमगीर आदि।

3.2 कबिरा खड़ा बाजार में -

कवि तथा लेखक भविष्य की ओर दृष्टिक्षेप करते हुए अपने साहित्य में यथार्थ

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR

परिवेश तथा स्वअनुभूति का सयोग करते हैं। अपनी आदर्श विचारधाराओं के साथ इन सबका मिलाफ करते हुए अपने साहित्य का सृजन करते हैं। यह बात भीष्म साहनी जी पर शत प्रतिशत सत्य साबित होती है।

साहनीजी की प्रस्तुत नाटयकृति कबीरकालीन समाज और उनके साथ परंपरा से चलते आ रहे अन्याय के खिलाफ लड़नेवाली वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। आज समाज में दिखाई देनेवाले सभी व्यक्तियोंकी प्रवृत्तियों को 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में दर्शाया गया है। जैसे निरंकुश तानाशाही, सत्ता का प्रतीक दिल्ली अधिपति सिकदर लोदी, आज की अफसरशाही का प्रतीक काशीनगर का कोतवाल, हर दिन किसी न किसी तरह से अपने भूखे पेट के लिए लड़ते हुए बार बार जुल्मों का शिकार होता तथा पलपल अपना अपमान सहता हुआ सामान्य जन का प्रतीक अंधा भिखारी नन्दू और बरसों से चली आ रही साप्रदायिकता धर्मांधता, विचारांधता और भावोन्माद का प्रतीक मठ के महन्त आदि को साहनी बडी खुबी के साथ दर्शाते हैं।

भीष्म साहनीजी के अपने नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' में अनोखे ढंग से धार्मिक परिवेश को प्रस्तुत किया है। उन्होंने इसमें स्वार्थपरता और भ्रष्टाचार से व्याप्त समाज में किस प्रकार मानवता का गला घोंट दिया जाता है इस बात को दर्शाया है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए धार्मिक आडंबर तथा झूठे कर्मकांडो का आवरण चढाने वाले साधुसंत, मुल्ला मौलवी का पर्दाफाश करना इस नाटक का उद्देश्य है। यह नाटक कुल तीन अंको में विभाजित है। कथानक निम्नप्रकार है –

प्रथम अंक में जुलाहों की बस्ती में कबीर की झोंपड़ी है। माता नीमा तथा पिता नूरा के साथ कबीर अपने घर में रहता है। अक्खड़ और फक्कड़ स्वभाव का कबीर संवेदनशील है। हर एक बात पर सवाल पूछकर कबीर मुल्ला मौलवी, पण्ड़ों से उलझते

फिरते हैं। बेटे की करतूतों से परेशान नूरा उन्हे हमेशा जलीकटी सुनाते हैं। कबीर की आदतों से तंग नूरा अपनी पत्नी नीमा से कहता है, कबीर जुलाहे का बेटा है तो जुलाहा बनकर रहे। 'सास्तरार्थ' न करे। शहर के कोतवाल का कोई भरोसा नहीं जिन्दा गाड़ देता है। इतने में कबीर आकर कहते हैं, दो कसाई गाय को बाँधकर ले ज़ा रहे थे। पीछे पीछे उसका बछड़ा चला जा रहा था। यह बात उसे बुरी लगती है वे उन्हें कहते हैं,

"दिन भर रोजा रहत है, रात हनत है गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुसी खुदाय।"[13]

नीमा भी कबीर के व्यवहार से चिंताग्रस्त है कि वह मुल्ला मौलवी तथा पण्डो से उलझाता फिरता है। ऐसा कर उसने दोनों से दुश्मनी मोल ले रखी है। नीमा कबीर को वात्सल्यभाव के कारण समझाना चाहती है कि वह इन धर्म के ठेकेदारों से न उलझा करे। तभी उसका ध्यान कबीर के खून से गीले हुए कुरते की ओर जाता है। उसे इस बात का पता चलने में देर नही लगती कि कबीर को फिर से कोडों की मार पड़ी है। वह कबीर को लोगों से सवाल न करने तथा शास्त्रार्थ में न उलझने की सावधानी बरतती है। तभी क्रुद्ध होकर कबीर चिल्लाता हैं, "मेरे मन में तरह तरह के सवाल उठते हैं माँ, मैं क्या करूँ?"[14]

अनपढ़ कबीर का संवेदनशील मन तरह तरह के प्रश्नों से आहत है। लोग न ही कबीर के प्रश्न को समझते है न ही कबीर को। इसी दौरान कबीर को यह बात जान पड़ती है कि वह एक विधवा ब्राह्मणी की नाजायज औलाद है। जिसे उसकी माँ नीमा ब्याह के पहले दिन से पालकी में आते हुए तालाब के किनारे से उठा लाई थी। नीमा से अपने जन्म संबंधी हकीकत जानकर कबीर व्यंग्य से कहता है, "तब तो मैं बड़ी ऊँची जात का हूँ माँ। ब्राह्मणी का हरामी बेटा। मैं कोई छोटा मोटा आदमी नहीं हूँ माँ।"[14] दूसरे दृश्य में शहर का कोतवाल एक कायस्थ के साथ वार्तालाप में मग्न दिखाई देता है। उनके

वार्तालाप से तत्कालीन धार्मिक स्थितियों का ज्ञान होता है। अलग अलग धर्म तथा उनके बीच पाये जानेवाले संप्रदाय पाठको के सामने आते है। उसके बाद महंत लोगों की एक बड़ी सवारी रास्ते से निकलती है। जिसमें एक साधु हवा में चाबुक लहराता चला आता है। दूसरा अपने हाथ में गंगाजल लिए अपना मार्ग पवित्र करते हुए गुजरता दिखाई देता है। महंत के अनुयावी हाथ में भाले, तलवारें, बर्छे उठाकर आगे बढ़ते चले आते हैं। तभी कबीर देखते हैं कि एक साधु निरीह लड़के को पीट रहा है। कबीर उस लडके को उससे छुड़ाकर स्वयं उलझ जाते हैं। तभी नेपथ्य से तोपें चलनेकी आवाजें सुनाई देती हैं। साधु पत्थर फेंकते हुए, गालियाँ देते हुए गुजरते दिखाई देते हैं।

दूसरे तथा तिसरे दृश्य में तत्कालिन परिस्थिति में दर्शाये हुए धार्मिक बाहयाडंबरो, अंधविश्वासों, व्यभिचार, अराजकतापूर्ण परिस्थिति का चित्रण किया गया है। तिसरे दृश्य में कोतवाल एक महन्त के साथ वार्तालाप करता हुआ दिखाई देता है। महंत एक मठ बनाना चाहता हैं मगर जहाँ मठ बन रहा हैं उसके सामने डोम चमारों की बस्ती है। महंत कोतवाल को रिश्वत देकर वह बस्ती हटाना चाहता है। तभी एक शेख कोतवाल को सूचित करता है कि उन डोम चमारों ने दीन कबूल किया है। अत: महंत की प्रार्थना स्वीकार करने में कोतवाल असमर्थ रहता है। उसी समय एक मौलवी बौखलाकर कोतवाल से कबीर की शिकायत करता है। वह कहता है कबीर कवित्तों के जरीए दीन की तौहीन करता है। वह मस्जिद की सीढियोंपर चढ़कर दीन को बुरा भला कहता है। उसके दो तीन साथी और भी है जो अक्सर नीची जाति के लोगों से घिरे हुए रहते हैं। उसी वक्त बाहर नन्दू (एक अंधा भिखारी) कबीर के पद गाता हुआ सुनाई देता है। कोतवाल उसे अपने पास बुलाकर एक अशरफी देते हुए कबीर के कवित्त गाने को प्रवृत्त करता है। जब वह बाहर जाकर कबीर के कवित्त गाने लगता है तो कोतवाल सिपाही को नन्दू को पॉच लोड़े लगाने की आज्ञा देता है। लेकिन चौथे कोड़ेपर ही दम तोड़वाले नन्दू की लाश गली गली घुमाने का हुक्म देता है। कोतवाल कहता हैं,"इससे सभी को कान हो जायेंगे। जब उसकी लाश

गली गली ले जायी जायेगी और साथ में सरकारी आदमी होगा तो अपने आप दहशत फैलेगी।"[16] चौथे दृश्य में खड्ड़ी चलाते कबीर के साथ रैदास, सेना, पीपा, आदि मौजूद हैं। भिखारी नन्दू की हत्या की खबर सेना देता है। साथही कबीर के कवित्त न गाने की सूचना देता है मगर कबीर गली बजार में घूमकर, चबूतरेपर सत्संग लगाने की सलाह देता है। उसी वक्त नन्दू की माँ का आगमन होता है, कबीर, रैदास, सेना उसे सांत्वना देते हैं।

पॉचवे दृश्य में प्रातःकाल का वर्णन किया गया है। तीन–चार आदमी और सेना खड़े बात कर रहे हैं। बशीरा जो पेशे से भिश्ती है वह भी उनमें शामिल हो जाता है। तथा अपने जन्म की कहानी सुनाता है। तभी कबीर और रैदास का आगमन होता है। कबीर स्वामी रामानंद द्वारा दीक्षाप्राप्ति की बात बताता है। सत्संग की शुरूवात होते ही एक लड़के द्वारा कबीर को अपना झोपड़ा कोतवाल के आदमियों द्वारा जलाये जाने की सूचना मिलती है। इसपर अत्यंत शांत स्वभाव से कबीर कहते हैं, "आज नहीं होता, कल होता। एक दिन यह होना ही था।"[17] इस बात से कबीर धर्म के ठेकेदारों पर करारा व्यंग्य करते हैं जो व्यभिचार एवं भ्रष्टाचार के पुतले हैं। फिर भी आम जनता उन्हें ईश्वर का दर्जा देती है।

अंक दो में पीपा बशीरा से कहता है कि, एक ही रात में महन्त के आदमियों ने गोरखनाथियों के पॉच आदमी मार डाले। तभी कबीर डोम–चमारों की बस्ती में कवित्त गाते दिखाई देते हैं। अगले दृश्य में जले हुए झोंपड़े की मरम्मत करके उसे रहने लायक बना दिया जाता है। कबीर की नवविवाहिता पत्नी लोई का कबीर के साथ आगमन होता है। लोई हैरान–सी कबीर के चेहरे की ओर देखती रहती है। वह परेशान है कि कबीर फिर कहीं वन में न भाग जाए। लोई की बातों से कबीर को गंगा में डुबोये जाने का पता चलता है। उसकी बातों से यह भी ज्ञात होता है कि उसके पिता ने जबरदस्ती उसकी

शादी कबीर के साथ की है। विवाह से पूर्व वह एक साहुकार के बेटे से प्रेम करती थी तथा उससे शादी करना चाहती थी। लोई अपने प्रेमी के पास जाने के लिए चल पड़ती है मगर तुरन्त ही कबीर के साथ अपना जीवन बीताने का निश्चय कर वापस लौट आती है।

तीसरे दृश्य में कायस्थ कबीर को अपने प्रतिभा की रक्षा करने की सलाह देता है। वह कबीर को खण्ड़न-मण्ड़न के कवित्त न करने की सूचना देता है। कायस्थ प्रशासनिक साम, दाम, दण्ड, भेद की जीतीजागती मूरत है। कबीर अपने निश्चयपर अटल रहते हुए कहते हैं,

"हम घर जारा अपना, लिया मुराड़ा हाथ
अब घर जारो तासुका, जो चले हमारे साथ।"[18]

कोतवाल कबीर तथा उसके साथियों को बन्दी बनाकर ले जाता है। इसके उपरांत एक अधिकारी आकर कोतवाल को सूचित करता है कि सिकंदर लोदी बिहार में अपनी फतह का झंडा गाड़कर लौट रहे हैं, लौटते समय शहंशाह कबीर से मुलाखात करना चाहते हैं। उसी वक्त कोतवाल कबीर तथा उसके साथियों को रिहा करने का हुक्म देता है।

तिसरे अंक में कबीर और रैदास सड़क के किनारे झाडू लगाते तथा भंडारे का आयोजन करते हुए दिखाई देते हैं। सत्संग शुरू होनेपर सुलतान लश्कर समवेत वहाॅ आ पहुॅचता है। कबीर के बारेमें शेखतकी से सुनने की वजह से शहंशाह कबीर से मिलने आते हैं। निर्भय कबीर सुलतान द्वारा पुछे गए प्रश्नों के बड़ी ही बेफिक्री से उत्तर देते हैं। इसी बीच सुलतान अपने गले की मोतियों की माला सहलाता है। उसे देखते ही कबीर को दानिश्मंद अमिर खुसरो की उक्ती का स्मरण होता है। कबीर के मतानुसार "गरिबों के आँसू मोती बनकर बादशहा सलामत के गले की जेबाइश बने हैं।"[19] कबीर की इस सफाई से धर्म से कट्टर, संकिर्ण ह्दयवाला, सुल्तान सिकंदर लोदी बौखला उठता है। वह कबीर पर समाज में बदअमनी फेलाने का इल्जाम रखते हुए कबीर को शहर से बाहर

निकाल देने का हुक्म देता है। सुलतान के सिपाही भाले – नेजे की नोक पर कबीर को वहाँ से अपने साथ ले जाते हैं। अन्य सिपाही कबीर के साथियों को वहाँ से भगाते हैं। तभी निर्भय कबीर अपनी धुन में मस्त होकर गाते हैं,

"मो को कहाँ ढूँढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में
ना मैं देवल ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।"[20]

इस प्रकार कबीर की विरोधपूर्ण चेतना की आवश्यकता आधुनिक युग में भी उतनी ही महत्वपूर्ण मानी जाती है, जितनी कि समसामायिक युग में मानी जाती थी।

'कबिरा खड़ा बजार में' में केवल कबीर की मनुष्यमात्र के प्रति समदृष्टि, प्रेमभाव, भक्तिभाव और व्यापक धर्मेत्तर दृष्टि ही नही अभिव्यक्त हुई है, अपितु इनके साथ ही उनका अध्यात्म भी निकला है।"[21] कबीर की मान्यता है कि हिंदू तथा मुसलमान 'एक ही माटी के भांडे' हैं। वे एक दूसरे से अभिन्न रूप में जुड़े हुए हैं।

निष्कर्ष -

'कबिरा खड़ा बजार में' भीष्म साहनी जी का नाटक कुल तीन अंकों मे विभाजित है। इस नाटक मे मध्ययुगीन भारतीय समाज का परिवेश चित्रित हुआ है। समाज में व्याप्त अनाचार, तानाशाही, दहशतवाद, धार्मिक अंधविश्वास आदि के विरूद्ध कबीर का संघर्ष दर्शाया गया है। भीष्म साहनी जी ने विवेच्य नाटक में धार्मिक स्थिति को उजागर किया है। धर्म के ठेकेदार व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के लिए धार्मिक बाहयाडंबरों का आवरण चढ़ाते हुए पाये जाते हैं। धर्म, पंथ के नाम पर समाज विभिन्न संप्रदायों में बँटा हुआ पाया जाता है। भगवान को प्राप्त करने के साधन, उन्हें कबीर का विरोध तथा ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रेम मार्ग का स्वीकार आदि बातों को दर्शाया गया है। व्यक्ति को व्यक्ति से अलग करनेवाले धर्माचार का विरोध करनेवाले कवीर का पंडित, मुल्लाओं तथा शहर प्रमुख

कोतवाल और तत्कालीन शासक आदि के विरूद्ध प्रखर विरोध दर्शाया गया है।

भीष्म साहनी जी ने समाज में व्याप्त विकृतियो तथा सामाजिक रूढ़ि—परंपराओं के प्रति विरोध प्रदर्शित करने के लिए कबीर के मिथक का प्रयोग खुबी के साथ किया है। कबीर ने अपनी परिस्थिति को जानकर उसमें व्याप्त समस्याओं को नष्ट करने के लिए कड़ा संघर्ष भी किया है। ''यह नाटक मध्यकालीन धर्मांधता, अनाचार, तानाशाही, बाहयाडंबरो एवं शासन सत्ता की तानाशाही आदि कुप्रवृत्तियों से युक्त सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कबीर के निर्भिक, सत्यान्वेषी, प्रखर व्यक्तित्व के साथ प्रतीकात्मक धरातल पर हमारी वर्तमान स्थिति और संघर्षों को अभिव्यक्त करता है।''[22]

1.4 नरेंद्र मोहन तथा उनकी रचना 'कहै कबीर सुना भाई साधो' (1988)

'कहै कबीर सुनो भाई साधो' नरेंद्र मोहन द्वारा लिखित नाटक कबीर के माध्यम से सत्य का उद्घाटन करनेवाला महत्वपूर्ण नाटक माना जाता है।

1.4.1 नरेंद्र मोहन : परिचय

नरेंद्र मोहन समकालीन रचनाकारों में एक महत्वपूर्ण रचनाकार माने जाते हैं। नरेंद्र मोहन लंबे समय से सृजनकार्य में जुटे हुए पाये जते हैं। आधुनिक हिंदी साहित्य में उनका स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है। आलोचना, कविता, नाटक इन तीनों विधाओंमें उन्हे क्रियाशील पाया जाता है।

नरेंद्र मोहन का जन्म 30 जुलाई, 1935 में लाहौर में हुआ। डॉ. नरेंद्र मोहन का जन्म अविभाजित हिन्दुस्तान में हुआ है। 1947 में देश के विभाजन के बाद जिस खौफनाक स्थिति का उद्भव हुआ उसका गहरा प्रभाव उनके साहित्यपर पाया जाता है। 19 अगस्त, 1947 को वे अपने परिवार के साथ अमृतसर आ गए। लाहोर में मास्टरी करनेवाले उनके पिताजी का हिंदी भाषा पर नितांत प्रेम था। उनकी माता स्वभाव से शांत, समन्वयी, त्याग

की मूरत थी।

देश विभाजन की दिल दहला देनेवाली घटनाओं से नरेंद्रजी का बालमन आहत हुआ। उस समय के खूनखराबा, लूटपाट, आक्रोश का परिणाम उनके मनपर हुआ। 1952 में उन्होने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। हिंदी विषय लेकर उन्होंने बी. ए. किया। 1966 में पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। खालसा कॉलेज, लुधियाना में 1958 में अध्यापन कार्य आरंभ करने के बाद सन् 1988 में हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय में वे नियुक्त हुए।

हिंदी, अंग्रेजी, मराठी, उर्दु आदि भाषाओंपर अधिकार रखनेवाले नरेंद्र मोहन को अपनी मातृभाषा पंजाबी से विशेष लगाव है। उनकी साहित्य साधना विपुल है, साहित्य के हर क्षेत्र में उनका विशेष योगदान रहा है।

कविता संग्रह -

इस हादसे में (1990), सामना होने पर (1979), एक अग्निकाड जगहें बदलता (1983), हथेली पर अंगारे की तरह (1990), संकट दृश्य का नहीं (प्र.सं 1993, द्वि.सं. 1999), एक सुलगती खामोशी (1997) आदि।

नाटक -

कहै कबीर सुनो भाई साधो (प्र.सं.1988, हि.स. 1992), सिंगधारी (1988), कलन्दर (1991), नो मैंस लँड (1994) अभंग गाथा (2000) आदि।

1 4 2 कहै कबीर सुनो भाई साधो -

इस नाटक का सर्वप्रथम मंचन राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा 14-15 नवम्बर को

पटना में आयोजित रंग–शिबिर में श्री. देवेन्द्रराज अकुर के निर्देशन में हुआ। दूसरा प्रदर्शन 'संभव', नयी दिल्ली की ओर से, नाट्य महोत्सव, शिमला में 27 अक्तूबर 1987 को हुआ। इसके निर्देशक थे देवेन्द्रराज अंकुर ।

कबीर के जिंदगी में जिस प्रकार से विद्रोही विचार का विकास विभिन्न अवस्थाओं में हुआ, उसी प्रकार से उन्हें प्रस्तुत नाटक में दर्शाया गया है। कबीर के जीवन के साथ जुड़ा हुआ एक अन्य पात्र है जिसका नाम है रमजनिया जिसे धनिया भी कहा जाता है। कुछ लोगों के मतानुसार वह कबीर की दूसरी पत्नी है। पहली का नाम लोई था। कुछ लोगों का कहना है वह प्रसिद्ध नर्तकी एवं वेश्या थी और कबीर की रखेल थी। पर उसे नाटककार ने कबीर की शिष्या का स्थान दिया है। 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' का ढाँचा घटनात्मक है। नाटक का कार्य व्यापार दो स्तरोंपर चलता हुआ दृष्टिगोचर होता हैं; एक : गायक–गायिका तथा वर्तमान के लोग और दूसरे : कबीर और उनके जीवन से संबंधित लोग। नाटक के कार्य व्यापार के क्षेत्र स्थल भी अलग–अलग हैं – बाजार, कबीर का घर, गंगा नदी का किनारा, कोतवाली, दरबार आदि। नाटक पंद्रह दृश्यों में विभाजित है।

'कहै कबीर सुनो भाई साधो' में कबीरकालीन युग की विसंगतियों एवं कबीर की ओर से उनके प्रतिकार का चित्रण करना; नाटककार का उद्देश्य रहा है। दृश्य एक में एक गायक और गायिका गाते हुए प्रवेश करते हैं। लोग धीरे धीरे उनके इर्द गिर्द इकठ्ठे हो जाते हैं। गायक गायिका के गायन द्वारा कबीरकालीन परिस्थिती तथा कबीर की जाति का ज्ञान होता है। इसी दौरान दो व्यक्ति तत्कालीन परिस्थिति का बयान करते हैं। वह बताते हैं कि किस तरह ऊँची जाति के लोग, नीची जाति के लोगोंपर अत्याचार करते हैं।

उनकी समस्या का समाधान करने के लिए गायक–गायिका उन्हे 600 वर्ष पूर्ण कबीर कालीन स्थिति का ब्योरा देते है। दृश्य दो में वे दोनो लोगो को कबीर युग में ले

जाते हैं; यह दर्शाया है। कंधोपर कपडों का थान रखे हुए, हात में इकतारा लिए हुए कबीर गा रहे है। साधुओ के वेश में घुमनेवाले, खुद को ईश्वर का बन्दा कहनेवाले ढोंगी, पाखण्डियों की कबीर ने निर्भत्सना की है। वे कहते है –

> ''ना जाने तेरा साहिब कैसा है।
> मसजिद भीतर मुल्ला पुकारे
> क्या साहिब तेरा बहिरा है?''[23]

कबीर झुठे कर्मकांड में मग्न, अधर्मी, भोगवादी, पाखण्ड़ी साधुओं की खिल्ली उडाते हैं। समाज के लोगोंपर अन्याय करनेवालों के खिलाफ ड़टकर मुकाबला करते हैं। निर्धन व्यक्ति को पूरा थान देने से कबीर के विद्रोही और कठोर व्यक्तित्व के पीछे छीपे हुए दया तथा करूणा के भाव पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं।

दृश्य तीन; जुलाहा पट्टी में खुलता है। नीमा और नीरू कबीर को लेकर परेशान हैं। नीमा--नीरू को कबीर के सत्संग, मुल्ला मौलवियो से उलझते फिरने पर जली कटी सुनाती है। इसी दौरान कबीर आ जाते है। कोतवाल किस प्रकार अपनी बीवी का झुमका चोरी हो जाने का बहाना बनाकर जुलाह पट्टी के लोगों को गिरफ्तार करता है आदि बातें नीमा कबीर को सुनाती है। तभी सेना किस प्रकार साधुओं से उलझने पर उन्होंने कबीर पर कोडे बरसाये इसका बयान करता है। धर्म के ठेकेदार, पाखण्ड़ी ब्राह्मणों की पोल खुलनेपर कबीर को उनकी प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है।

चौथे दृश्य में मगहर में किस तरह अकाल और महामारी की आपत्ति आती है तथा दिनरात मेहनत करनेवाले श्रमजीवी किस तरह अध पेट रह जाते हैं, ठाकुर, पटवारी, मुकादम किस प्रकार उनपर जुल्म करते हैं इसका वृत्त बिजली खॉ और बोधन देते हैं। कबीर अपने इन दोनों साथियों को सत्सग करने तथा 'दिल्ली के शहंशाह' को अपने राज्य की दुर्गती का ज्ञान कराने दिल्ली भेजना चाहते हैं।

दृश्य पाँच में कबीर की मुलाकात वणखण्ड़ी साधु की कन्या लोई से होती है। साधु अपनी कन्या लोई के विवाह का प्रस्ताव कबीर के समक्ष रखता है। छटे दृश्य में नवविवाहिता लोई तथा कबीर के वैवाहिक जीवन की शुरूआत दिखाई गयी है। बातचीत के दौरान लोई कबीर को उसके और साहुकार के बेटे के प्रेम संबंधो के बारे में बताती है। मन में बड़प्पन लिए कबीर लोई को उसके प्रेमी के पास पहूँचाने जाता है। लोई को कबीर के साथ देख साहुकार का बेटा लज्जीत होकर कबीर के पैरों सें लिपट जाता है। घर संसार के प्रति बेफिक्र भावना, आये दिन पंड़ित, मुल्लाओं से उलझते फिरना आदि बातों से कबीर की पत्नी का क्रोधित होना सातवे दृश्य में स्पष्ट होता है।

अंतराल में गायक—गायिका कबीर के सत्यवादी स्वभाव के परिणामस्वरूप उसके परिवार में किस तरह झगड़े हुआ करते थे इसका स्पष्टीकरण देते हैं। सुननेवाले व्यक्ति उस बात का समर्थन करते हुए सत्यवादी बनने से अपनी अवस्था का बयान करते हैं। आठवे दृश्य में लोई कबीर को दूसरों के झगड़ों—झमेलों में न कूदने की सलाह देती है। उसे ड़र है कि कबीर के स्वभाव की वजह से कमाल का भविष्य बरबाद न हो जाए। कबीर को रामनाम बेचकर धन कमाना पसंद नहीं। इससे क्रोधित होकर कबीर कहते हैं —

'नाम साहब का बेचकर, घर लाया धन कमाल ।
बूडा वंश कबीर का, जनमा पूत कमाल।''[24]

दसवे दृश्य में सांप्रदायिक दंगे फसादों का वर्णन है। हिंदू मुसलमान एक दूसरे के जान के दुश्मन बने हैं। रक्तपात और लूटमार का दौर चल रहा है। सेना के मतानुसार इन सारी करतूतों के पीछे शहर के-कोतवाल का हाथ है। अर्थात सत्ताधारी पक्ष या राजनीतिज्ञ अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए आये दिन एक को दूसरे से लड़वाकर दंगाफसाद करवाते हैं।

कबीर किस तरह साधुओं, पंड़ितों को खरी खोटी सुनाते हैं, समाज में होनेवाले कर्मकांडों बाहयाचारों के विरूद्ध निर्भीड वृत्ति से लड़ते हैं, मुल्ला मौलवियों को किस तरह प्रताड़ित करते हैं इसका विवेचन दृश्य ग्यारह में किया गया है।

बारहवें और तेरहवे दृश्य में वजीर तथा शेखतकी कबीर की शिकायत सिकंदर लोदी के दरबार में करते हैं। शेखतकी; कबीर और उसके साथ जुटे सम्प्रदाय को इस्लाम में लाने की योजना पेश करता है। साथ में यह भी बतात है कि कबीर जगह जगह दीन की तौहीन करता फिरता है। सिकंदर लोदी शेखतकी के सामने अक्खड़, फक्कड़ कबीर को फुसलाकर लाने का प्रस्ताव रखते हैं। राजनिति के दबाव के तहत शेखतकी कबीर को दरबार में लाने के लिए विवश हो जाता है। शेखतकी और कबीर के मधुर संबंधो को ध्यान में रखकर बादशाह यह जिम्मेदारी शेखतकी को सौंपते हैं।

तेरहवा दृश्य सिकंदर लोदी के दरबार में खुलता है। बादशाह के दरबार में वजीर, अमीर, काजी–ए–ममालिक, शेखतकी, अधिकारी गण आदि यथास्थान बैठे हुए होते हैं। अमीर हाजीब बादशाह के सामने कबीर को पेश करता है। कबीर बादशाह को अभिवादन नहीं करता; इससे बादशाह क्रोधित हो जाते हैं।

कबीर के मतानुसार ईश्वर से बढ़कर कोई नहीं इसलिए वह निर्भिक स्वभाव के कारण तत्कालीन शासक सिकंदर लोदी के समक्ष नीड़र खड़े रहते हैं। मौत का भय सत्य के सामने घुटने टेक देता है। समाज का एक बड़ा हिस्सा कबीर के साथ खड़ा होने की वजह से सिकंदर लोदी कबीर को मृत्यूदंड नहीं दे सकते। लेकेन आज के राजनीतिज्ञों की तरह कुटिलता से कबीर और रमजनिया के संबंधो को अनैतिकता के कीचड़ में फँसाकर उन्हे बदनाम कर देते हैं।

निष्कर्ष -

'कहै कबीर सुनो भाई-साधो' नरेंद्र मोहन जी का नाटक पंद्रह दृश्यों में विभाजित पाया जाता है। विवेच्य नाटक में लेखन ने गायक और गायिका के कथागायन द्वारा काशी का दर्शन कराया है। गायक गायिका अन्याय के खिलाफ आवाज उठानेवाले कबीर का उदाहरण देकर लोगों में जागृति पैदा करने का कार्य करते हैं। इस नाटक में कबीर के विद्रोही व्यक्तित्व के

साथ साथ सरल व्यक्तित्व की छवी स्पष्ट दिखाई देती है। इस नाटक में हिंसा कर ईश्वर की प्राप्ति करने के बदले व्यक्ति पूजा करने पर बल दिया गया है। समाज के व्यर्थ रीति रिवाजों, पूजा अर्चा, नमाज पठण आदि के विरूद्ध आवाज उठाने वाले कबीर प्रेममार्ग का पुरस्कार करते हुए पाये जाते हैं। विवेच्य नाटक में नरेंद्र मोहन जी ने कबीर को आधार बनाकर अन्याय, अत्याचार, शोषण तथा गमन के विरूद्ध आवाज उठाने का प्रयास किया है। नरेंद्र मोहन द्वारा कबीर को माध्यम बनाकर नाटयकृति बनाने के संदर्भ में श्याम आनंद कहते हैं, ''अपनी ही रूढ़ियों से ग्रस्त समाज उसकी पारंपारिक विडंबनाओं की पोल जब इमानदारी से खोलनी हो तो भला कबीर से अच्छा माध्यम कहाँ मिल सकता है। कबीर का पूरा जीवन झूठ और पाखण्ड के विरूद्ध बिल्कुल अरूमानी भाव से खडा मिलता है। आज यहाँ हम हर तरफ से अपनी ओर फॉसीवादी शिकंजा बढ़ता हुआ महसुस करते हैं। लोक कल्याणकारी तथ्य के नाम पर सत्ता को हाथियार बनाकर लोगोंपर मनमानी कर रहें है। तो ऐसे में इन सभी अनर्गल बातों का प्रतिरोध करनेवाली शक्ति ऐतिहासिक थाती का सहारा ढूँढेंगी। संभवत: यही वह कारण है कि डॉ. नरेंद्र मोहन ने कबीर संबंधी ऐतिहासिक मिथक को नाटक के रूप में वर्तमान परिपेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। ''[25]

इस प्रकार कबीर जीवन पर आधारित तीनों आधुनिक नाटकों 'इकतारे की ऑख', 'कबिरा खड़ा बजार में' और 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' के सामान्य परिचय से स्पष्ट होता है कि इन नाटकों के नाटककारों ने समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों के संदर्भो को कबीर के मिथक द्वारा प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। साथ ही कबीर के जीवन वृत्तपर प्रकाश डालते हुए समाजसुधारक कबीर के निस्पृह, नीडर और विद्रोही व्यक्तित्व को भी इन्होंने उभारा है। तीनों नाटककार समसामयिक सामाजिक समस्याओ का निराकरण करने और सामाजिक विकृतियों और असंगतियों का डटकर विरोध करने की कामना करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार इन मिथक नाटकों में लोकमंगल का भाव व्याप्त है।

❖ संदर्भ सूची ❖

			पृष्ठ
1.	'कहै कबीर —— को लिखते और देखते हुए	: नरेंद्र मोहन	9
2.	साठोत्तर हिंदी नाटक	· संपा.विजयकांत धरदुबे	52
3.	नाटककार भीष्म साहनी	· डॉ. सुरैय्या शेख	287
4.	राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति : मणि मधुकर	. संपा. प्रकाश आतुर	35
5.	इकतारे की ऑख	: मणि मधुकर	43
6.	-- वही –		23
7.	--- वही –		26
8.	-- वही –		33
9.	– वही –		45
10.	-- वही –		64
11.	-- वही –		75
12.	साठोत्तर हिंदी नाटक	: डॉ. नीलम राठी	260
13.	कबिरा खड़ा बजार में	: भीष्म साहनी	21
14.	--- वही –		26
15.	-- वही –		24
16.	-- वही –		47
17.	-- वही –		61
18.	--- वही –		93
19.	-- वही –		107
20.	-- वही –		110
21	साठोत्तर हिंदी नाटक	: डॉ. नीलम राठी	292
22.	– वही –		293
23.	कहै कबीर सुनो भाई साधो	· नरेंद्र मोहन	25
24.	-- वही –		57
25.	साठोत्तर हिंदी नाटक	: डॉ. नीलम राठी	312